

भावक

हिंदी साहित्य : सृजन एवं चिंतन के विविध आयामों पर केंद्रित
खंड-1, अंक-2; पौष-फाल्गुन, 2075/जनवरी-मार्च, 2019

संरक्षक

डॉ. कमल किशोर गोयनका

एम. ए., पीएच डी., डी. लिट्.

उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

परामर्श मंडल

प्रो. रामवीर सिंह

एम. ए., पीएच डी.

विभागाध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रो. जय सिंह 'नीरद'

एम. ए., पीएच डी.

पूर्व निदेशक

क. मुं. हिंदी तथा भाषा विज्ञान,
विद्यापीठ, आगरा

ई-मेल : prof.jaisingh@gmail.com

प्रो. रामसजन पाण्डेय

एम. ए., पीएच डी., डी. लिट्.

पूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

ई-मेल : drramsajanpandey@gmail.com

प्रो. चंदन कुमार

एम. ए., एम. फिल., पीएच डी.

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ई-मेल : dr.chandanchaubey@gmail.com

प्रधान संपादक

प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय

एम. ए., पीएच डी.

निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

ई-मेल : nkpandey65@gmail.com

संपादक

डॉ. ज्योत्स्ना रघुवंशी

एम. ए., एम. एड., एम. फिल., पीएच डी.

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग,

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

ई-मेल : drjyotsnar@gmail.com

संपादक मंडल

प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह

हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

ई-मेल : singhpydr@gmail.com

डॉ. विवेकानंद उपाध्याय

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

ई-मेल : vivekanand27@gmail.com

डॉ. मीनाक्षी दुबे

सहायक प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

श्री अनुपम श्रीवास्तव

सहायक प्रोफेसर, सूचना एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

ई-मेल : anupamhindi.khs@gmail.com



अध्यापक शिक्षा विभाग केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005

अनुक्रम

आलेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पृ. सं.
● प्रधान संपादक की कलम से आदिकाल और संत साहित्य पर शोध की संभावनाएँ	नन्दकिशोर पाण्डेय	5-16
● संपादकीय	ज्योत्स्ना रघुवंशी	17-18
● साहित्य-कर्म और 'राष्ट्रीय स्व' की अवधारणा	कमल किशोर गोयनका	19-26
● 'उपसंहार' की कथा भाषा और शिल्प का विश्लेषण	विवेकानंद उपाध्याय	27-30
● दलित कथा साहित्य का भाषा शिल्प	चंदा बैन	31-39
● नागार्जुन की कविताओं में राष्ट्रबोध	सोनी स्वरूप	40-43
● माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर	नीरज कुमार सिंह एवं बबीता सिंह	44-47
● समकालीन हिंदी कविता में स्त्री स्वर	आलोक सिंह	48-55
● रंगभूमि का खिलाड़ी-सूरदास	रवि शर्मा 'मधुप'	56-65
● प्रेमचंद और फिल्म : समीक्षात्मक अध्ययन	लता अग्रवाल	66-73
● समकालीन ग़ज़लों में राष्ट्रीय चेतना	अभिनव अरुण	74-81
● सुभद्रा जी की कहानियों में स्त्री	ज्योत्स्ना रघुवंशी	82-85
● हिंदी शोध कार्य में संदर्भीकरण और पाद टिप्पण	नवीन नन्दवाना	86-91
● हिंदी शोध के प्रयोजनमूलक तथा तकनीकी क्षेत्र : प्रविधि तथा स्तरीकरण के लिए सुझाव	अश्विनी कुमार शुक्ल	92-96

दलित कथा साहित्य का भाषा शिल्प

—चंदा बैन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसे समाज में विचारों के आदान-प्रदान की आवश्यकता सदैव बनी रहती है, इस वैचारिक आदान-प्रदान की ध्वनि प्रक्रिया को भाषा कहते हैं। भाषा का मानव समाज एवं उसकी संस्कृति से गहरा संबंध है क्योंकि भाषा मानवीय संस्कृति और परंपराओं की वाहक होती है। भाषा अनुभूति की अभिव्यक्ति का साधन होती है। भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। अतः प्रत्येक समाज का परिवेश अपनी विशिष्ट भाषा की उत्पत्ति का आधार होता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि “भाषा मानव-उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं।”¹ डॉ. कैलाश पांडेय ने लिखा है—“भाषा का अर्थ है व्यक्त-वाक्”²। “वाक् और वाणी ही भाषा के द्योतक पुराने शब्द हैं। पाणिनि ने बताया है” आत्मा बुद्धि के द्वारा कार्यो को समझ कर मन को बोलने की इच्छा से प्रेरित करती है। मन शरीर की अग्नि शक्ति पर जोर डालता है और वह शक्ति वायु को प्रेरित करती है जिससे शब्द वाक् की उत्पत्ति होती है—

“आत्मा बृद्धया समेत्यार्थान् मनोमुड़क्ते विवक्षया।

मनः कायाविनमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥”³

समाज में संवाद सर्वोपरि है और समाज अपनी समग्रता को अभिव्यक्ति देने के प्रतीकों को बना लेता है जिसे भाषा कहा जाता है। भाषा व्यक्ति और समाज के उत्थान और पतन की भी अभिव्यक्ति करती है। भाषा साहित्य सृजन का महत्वपूर्ण और मूल आधार है। भाषा ही वह माध्यम है जिससे साहित्यकार अपनी अनुभूतियों और विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति की एक संप्रेषणीय व्यवस्था है जिसका सीधा संबंध संरचना से होता है। भाषा वैज्ञानिक कहते हैं कि भाषा प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था होती है। भाषा का प्रयोग समाज में होता है अतः वह सामाजिक वस्तु है। समाज और साहित्य का संबंध भाषा के ही कारण होता है अतः भाषिक संरचना का आकर्षण ही किसी साहित्यिक संरचना के प्रति पाठक का कौतूहल जागृत करती है। इसलिए साहित्यकार सामान्य भाषा क्षेत्र के शब्द भंडार के प्रसंगानुकूल शब्द चयन, वाक्य गठन एवं विशिष्ट संरचना के आधार पर साहित्य सृजन करता है। स्पष्टतः साहित्य की भाषा सामान्य भाषा से अलग हो जाती है। सामान्य भाषा में जहाँ शब्दों का अधिकांश अभिधात्मक प्रयोग होता है। वहाँ मात्र सूचना देने का कार्य होता

है; वहीं साहित्य की भाषा में लक्षणा और व्यंजना जैसी शब्द शक्तियों का प्रयोग करके उसे चिंतन प्रधान और गंभीर अर्थ युक्त बना दिया जाता है।

भाषा विचारों का संवहन करती है, अर्थ को गति देती है और माप संकेतों का प्रसारण करती है परंतु साहित्यिक भाषा शब्दों के अर्थ को बार-बार नवीनता प्रदान करती है। अलंकार, सुंदर वर्ण विन्यास, विशेष शैली आदि भाषा की शोभा बढ़ाते हैं। “साहित्यिक भाषा सजी और सँवरी हुई वधू के तुल्य है जिसका सौंदर्य दर्शनीय है पर उसका स्वाभाविक हाव-भाव, अंग संचालन और स्वभाव अप्रत्यक्ष है, उसकी कृत्रिमता उसकी स्वाभाविकता को नष्ट कर देती है। दूसरी ओर साधारण भाषा स्वच्छंद विहारिणी ग्राम युवती के तुल्य है जिसके हाव-भाव प्रकाशन में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है।”⁴ सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा को हम कह सकते हैं कि सामान्य भाषा जीवन के मर्म को उद्घाटित न कर धर्म को व्यक्त करने की प्रक्रिया है जबकि साहित्यिक भाषा किसी चिंतन और अनुभव को आकार देने वाली होती है। इसी प्रकार साहित्य में विभिन्न विधाओं की भाषा में भी अंतर होता है। यही भाषायी अंतर हमें समाज के विभिन्न वर्गों में भी दिखाई देता है। एक ही समाज के विभिन्न स्तरों में भी भाषायी विविधता प्राप्त होती है।

जब प्रत्येक समाज का परिवेश अपनी विशिष्ट भाषा की उत्पत्ति का आधार होता है तब हजारों वर्षों से दलित, शोषित और समाज से बाहर किए हुए वर्ण को शिक्षा, सत्ता और संपत्ति के अधिकार से वंचित रखने के षड्यंत्र के साथ पशुओं सा जीवन जीने को विवश, दलित समाज में मनुष्य होने का अहसास कराने के लिए सदियों से भोगी पीड़ा और यथार्थ को रूप देने के लिए ऐसे लिखित प्रामाणिक दस्तावेज की आवश्यकता थी, जिसे उसी दलित समाज की भाषा में व्यक्त किया जा सके। यहाँ दलित समाज के साहित्य को समझ लेना आवश्यक है। दलित साहित्यकार केवल उन व्यक्तियों को ही दलित मानते हैं जिन्हें वर्ण व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है, समाज में जिनके साथ छुआ-छूत का व्यवहार होता रहा है तथा जिन्हें संविधान द्वारा अनुसूचित जाति वर्ग में रखा गया है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार—“दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा है। उसका दलन हुआ, शोषण हुआ। इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जाति कहा गया, जो जन्मना अछूत है।”⁵ दलित लेखकों ने दलित उत्पीड़न को स्वयं भोगा है और आज उसे लिखने का प्रयास भी किया जा रहा है।

दलित कथा साहित्य की अपनी एक विशिष्ट भाषा है जिसमें दलित जीवन एवं दलित वर्ग की पीड़ा, उत्पीड़न, अशिक्षा, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन ध्वनित होता है। इसलिए दलित कथाओं की भाषा को हिंदी के समीक्षकों द्वारा अपरिष्कृत, अनपढ़,

अपरिमार्जित तथा अश्लील भी कहा जाता है। दलित कहानियों में प्रयुक्त भाषा को हम कई रूपों में देखते हैं। दलित कहानियों के गैर दलित पात्रों की भाषा जातीय श्रेष्ठता के ढंग से प्रभावित है जिसमें दलित पात्रों के लिए गालियाँ तथा चुभने वाले अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे दलित पात्र के विरुद्ध पुलिस इंस्पेक्टर की भाषा देखिए—“सालों, चमारों अब तुम्हें जबान लड़ाना भी आ गया। एक एक की में मैंने डंडा न चढ़ाया तो मेरा नाम एस. पी. त्यागी नहीं।”⁶ इसी प्रकार रूपनारायण सोनकर की कहानी ‘होली का बल्ला तरें तरें’ में सवर्ण पात्र दलितों की स्त्रियों को गाली देकर होली में मनोरंजन करते हैं और यही ग्रामीण लोक की परंपरा भी है—

“होली का बल्ला तरें तरें खटकनिया परें परें

होली का बल्ला तरें तरें चमारिन परें परें।”

दलितों के प्रति सवर्ण पात्रों की भाषा अभद्र गालियों से युक्त व्यंग्यात्मक और आक्रामक है जो दलितों के प्रति उनकी मानसिकता को व्यक्त करती है। दलित वर्ण व्यवस्था और जातीय उत्पीड़न को अपनी नियति एवं सामाजिक नियम मानने वाले दलितों की भाषा में जहाँ हीनता एवं भय झलकता है वहीं जातीय भेदभाव के विरुद्ध लामबंद हुए दलितों की भाषा स्वाभिमान एवं आक्रोश से युक्त है—“तुम जाय माफ कर दो हम भंगिन की का मजाल जो ठकुराइन पे हाथ छोड़ें”⁷ खंडित स्वाभिमान हीनता और भय से युक्त है परन्तु “हम जूठन न लेंगे और न ही गंदगी साफ करेंगे” यह दलित चेतना और स्वाभिमान की भाषा है। अशिक्षा, आर्थिक, सामाजिक पिछड़ापन एवं ग्रामीण परिवेश से संबद्ध होने के कारण दलित पात्रों की भाषा अमानक एवं ग्रामीणता के पुट से युक्त है जो बनावटीपन से दूर होकर यथार्थ की सृष्टि में सहायक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है—“भाषा जब-जब परिष्कृत बनी समाज से कटी है। वह एक वर्ण विशेष की भाषा बनी है। संस्कृत भाषा के साथ भी यही हुआ, इस भाषा का आम जीवन से कोई सरोकार नहीं, जबकि दलित साहित्य की भाषा में श्रम की महत्ता है यह भाषा आम जीवन की बात करती है, दलित-शोषित की बात करती है दलित साहित्य की भाषा धोबी और चमार की भाषा है। इनमें जो एक खांचा तैयार होता है वह दलित साहित्य की भाषा है।”⁸ दलित कथाओं में भाषा का भेद स्पष्ट दिखाई देता है। सदियों से प्रताड़ित समुदाय की भाषा में आज जो साहित्य लिखा जा रहा है वह आनंद प्रदान करने वाला नहीं है बल्कि उस समुदाय के आक्रोश और विद्रोह को व्यक्त करने वाला है यह विद्रोह और प्रतिरोध दलित साहित्य की प्रत्येक विधा में मुखर होकर उभरा है। आज दलित लेखक अपनी भाषा के शब्दों, मुहावरों और भाषा के घटक रूपों का प्रयोग करके ही भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति दे रहा है। अतः दलित साहित्यकारों को जिस भाषा की आवश्यकता थी वे दलितों के परिवेश की बोली को हू-बू-हू उसी देशज रूप में प्रस्तुत करने में विश्वास रखते हैं। दलित साहित्य की एक महत्वपूर्ण

उपलब्धि उसका लोक जीवन से जुड़ा होना है। दलित कहानियों की भाषा जनता के जन-मन को संबोधित करने वाली है। ठेठ लोक जीवन और समाज के निचले वर्ग के जन से जुड़ी अनुभूतियों को प्रामाणिकता के साथ व्यक्त करने वाली ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'शवयात्रा' दृष्टव्य है—“ना बेदरै इब आखिरी बखत में यों गाँव क्यूँ छुड़वावे—पुरखों ने यहाँ आक्के किसी जमाने में डेरा डाल्ला था। यहीं मर खप्प गए, इसी माट्टी में। इस जोहड़ की दैंग से रहके जिन्दगी काट दी। इब कहाँ जाँगे।”⁹ पूरी जिंदगी जिल्लत की जिंदगी जीने पर भी अपनी मिट्टी से इतना जुड़ाव दलित लोक जीवन के भाव को प्रकट करता है। दलित समाज में जहाँ बेचारगी और भय है वहीं आक्रोश को भी ये कहानियाँ व्यक्त करती हैं। प्रहार की भाषा कहीं सीधे—सादे रूप में लक्ष्य की ओर अग्रसर है तो कहीं आक्रोश से परिपूर्ण है। गाँव की जाति—पाँति की भेद—भावना से त्रस्त शयौराज सिंह बेचैन की कहानी 'रावण' का पात्र भूलसिंह गाँव छोड़कर दिल्ली आ गया। उसकी वेदना देखिए—“परन्तु आज वह किसी और आवेश के भँवर में फँसा था गाँव में मैं पच्चीस साल को हैगओ एक दिन हूँ इज्जत को नाय गुजरो। भाड़ में जाए 'जनम-भूमि' मैं नाय लौटंगों ससुरे गाँव में।”¹⁰ यह आक्रोश लगभग सभी कथाकारों में मुखरता के साथ व्यक्त हुआ है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'लाठी' की भाषा संयमित आक्रोश का सुंदर उदाहरण है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'हारे हुए लोग' भी सामाजिक उत्पीड़न से उत्पन्न आक्रोश को प्रस्तुत करती है। दलित कथाओं में दुख, पीड़ा, संत्रास कारुणिक भाषा का रूप लेकर युगीन परिवेश को रेखांकित करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जिनावर' कहानी में नारी की अस्मिता पर समाज में उठे सवाल को भाषा के माध्यम से दुहराने का प्रयास किया है जो एक बदनुमा दाग के रूप में समाज पर लगा है। सभ्य समाज में स्त्री सिर्फ इस्तेमाल की वस्तु है जहाँ ससुर पिता तुल्य होता है वही अपनी बहू के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए इतना आतुर रहता है कि सारी हदें पार कर जाता और नाकाम होने पर स्त्री को लांछित कर भगा दिया जाता है। लेखक लिखता है—“चौधरी मेरा ससुर ससुर नहीं खसम बणना चाहवे था। मेरा मैंने विरोध किया तो मुझे मारा पीटा गया। तरह—तरह के जुल्म किए फिर भी मैंने हार नी मानी तो निकाल बाहर किया तुझे हुकुम दिया जा छोड़ आ इसे बहू के भीतर जगा लावा मौका पाते ही फूट पड़ा।”¹¹ यहाँ कहानी में भाषिक संप्रेषण और मार्मिकता का पुट कहानी की पठनीयता के साथ पाठक की संवेदना को भी जागृत करता है। सुशील टाक—भौरे की कहानी सिलिया का एक दृश्य देखिए—“कुत्ता बिल्ली उस घर में बे—रोक टोक आ जा रहे थे पर दहलीज पर ही उसे हाथ के इशारे से रोक दिया गया। इस व्यवस्था को मिटाने के लिए क्या कुछ भी नहीं हो सकता।”¹² जाति की यह अमानवीय व्यवस्था सिलिया को अंतर्मन तक बेधकर चिंतनशील बना देती है। इसी तरह कावेरी की

सुमंगली, रजनी की कहानी 'राजो' देखी जा सकती है। दलित साहित्य दलितों की पीड़ा और संत्रास को व्यक्त करता है अतः समाज के बहुसंख्यक दलितों के परिवेश रहन-सहन, पीड़ा, संत्रास आदि को लोकोक्तियों और मुहावरों के द्वारा भाषा को संप्रेषणीय, सुगठित एवं सशक्त बनाया गया है। रत्नकुमार साँभरिया ने लिखा है—“भाषा विचार को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है भाषा जितनी सहज, सरल लोकोक्तियों—मुहावरों से युक्त और आम बोलचाल की होगी कहानी उतनी ही मर्मस्पर्शी बन पड़ेगी।”¹³ दलित कथाकारों ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह 'बेचैन', डॉ. ठाकुर प्रसाद 'राही', जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान आदि ने लोकोक्ति—मुहावरों द्वारा अपनी भाषा को सशक्त बनाया है।

मुद्रा राक्षस ने लिखा है कि दरअसल कोई भी नया कथाकार अपने पूर्व की विचार परंपरा से विद्रोह भी करता है। अपनी सीमा तक परंपरा के सौंदर्यबोध संबंधी मूल्यों को भी तोड़ता है कबीर ने यही किया उन्होंने जिस भाषा का आविष्कार किया था वह देश के बहुसंख्यक गैर साहित्यिक समाज के बोध की भाषा थी।¹⁴ दलित साहित्य की भाषा परख अतिआवश्यक है क्योंकि देश की सामाजिक परिस्थितियों से जूझते आम आदमी की यही भाषा है। अपने जीवनानुभवों से गुजरते हुए उन्हीं की भाषा में दलित कथाकार बात करता है। रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि “इस साहित्य को दलित लिखता है और वह भुक्तभोगी होता है। यानि वह वंचनाओं, निषेधों, प्रतिबंधों और अवरोधों के बीच जिंदा रहने का आदी होता है। इस साहित्य को वह लिखता है, जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा है, कल्पना के आकाश पर नहीं, इसलिए इसकी भाषा कुलीन नहीं है। कुलीन भाषा इस काबिल नहीं कि दलित की जिंदगी के खुरदुरेपन को समेट सके। कुलीन भाषा और साहित्य मनोरंजन और ऐश्वर्य के साधन रहे हैं।”¹⁵ दलित कथाकारों की भाषा में भाषिक संवेदनशीलता में सामाजिक संवेदनशीलता छिपी रहती है। दलित साहित्य में भाषा अपने नये और प्रखर रूप में हमारे सामने आती है और भाषा तथा कला का कोई मापदंड इसे सीमाबद्ध नहीं कर सका।

दलित कलाकारों की भाषा पर चर्चा के साथ ही इनके शिल्प पर भी बात करना जरूरी है। शिल्प शब्द से तात्पर्य कथाकार की भाषा एवं उसकी कथन भंगिमा से है। वह अपने भावों की अभिव्यक्ति किस भाषा शैली में करता है इसका सीधा संबंध उसके भाषिक विधान से है। भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। शिल्प और शैली कथाकार की एक कला है उसका कौशल है। हिन्दी शब्द कोशों में शिल्प के अर्थ इस प्रकार दिए गए हैं—वृहद हिंदी कोश के अनुसार “शैली से ज्यादा वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को विशेष ढंग से ही व्यक्त कर पाता है।”¹⁶ साहित्यकार साहित्य सृजन में भाव, विचार के साथ ही

भाषा-शैली, कथन की भंगिमा को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है साहित्यकार के इसी रोचक ढंग की प्रस्तुति के तरीके को 'शिल्प तत्व' के नाम से जाना जाता है। शब्द चयन, वाक्य-विन्यास, प्रतीक, उपमाएँ, मुहावरे इत्यादि का उचित प्रस्तुतीकरण ही शिल्प के विकास में सहायक होते हैं।

परंपरागत साहित्य से अलग अपने अस्तित्व को स्थापित करने वाले दलित साहित्य को सर्वाधिक सौंदर्यगत प्रश्नों से ही जूझना पड़ता है। दलित साहित्य के शिल्प को लेकर दलित साहित्यकारों के विचार अलग-अलग हैं। डॉ. राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "इसे (दलित साहित्य को) हमारे जैसा बनने में समय लगेगा। यानी स्टैंडर्ड हम हैं। हमने अपने आप को मानक मान लिया है। हम यह तय करेंगे कि उसकी भाषा कैसी हो हम उसके ऊपरी तौर तरीकों को देखते हैं, उसके भीतर जो तकलीफ है उसे नहीं देखते। दलितों के संदर्भ में मुख्य धारा के आलोचक शिल्पवादी, कलावादी हो जाते हैं। जो हमारे हिसाब से खरा नहीं उतरता वह यहाँ नहीं आयेगा।"¹⁷ दलित कहानियों के शिल्प के विषय में डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' कहते हैं कि परंपरागत शिल्प शास्त्री दलित साहित्य में वैसा ही शिल्प चाहते हैं जैसा शिल्प देखने के वे अभ्यस्त हो गए हैं। वे नए विषय, नए संदर्भ और नए शिल्प जो दलित समाज, साहित्य और संस्कृति की पृथक संरचना के कारण अलग स्वरूप में हैं। गैर दलित विद्वान इसे समझने की क्षमता नहीं रखते।"¹⁸ हिन्दी के चर्चित दलित लेखक मोहनदास नैमिश्वराय के अनुसार "दलित साहित्य के संदर्भ में जब शिल्प के बारे में सवाल उठाए जाते हैं तो वैसे लेखक और समीक्षक दलित समाज की भीतरी संरचना भाषा, लोक-कला उनकी परंपराओं का अध्ययन नहीं कर पाते, इसीलिए शिल्प की बात उठती है। मेरी राय में कोई भी शिल्प, दलित साहित्य पर लागू नहीं होता।"¹⁹ दलित कलाकार जिन परिस्थितियों में जैसे परिवेश में जीवन गुजारते आ रहे हैं, वे उन्हीं दलितों में पैदा हुए अपने साहित्यिक संस्कारों को परिवेशगत अपने अनुभवों को अलग तरह से समाज को लौटा रहे हैं।

दलित कहानी जहाँ समय की यथार्थ प्रस्तुति करती है वहीं दलित कथाकार को इस बात का ध्यान रखना होगा कि जो वह रच रहा है उसकी अभिव्यक्ति में जीवंतता बनाये रखने का शिल्प होना चाहिए। दलित कहानियाँ संवेदना और शिल्प को ऐसे उकेरती हैं कि सम्पूर्ण परिदृश्य जीवंतता की पराकाष्ठा पार कर जाये। ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'शवयात्रा' ऐसे विद्वप यथार्थ को प्रस्तुत करती है कि मानव की अंतरात्मा चीख उठे। मानवता का प्रतीक डॉक्टर बेटी के पिता कल्लन से कहता है—"नहीं यहाँ पर मत लाना कल से मेरी दुकान ही बंद हो जायेगी। यह मत भूलो तुम बल्हार हो"²⁰ वहीं ग्राम प्रधान बलराम सिंह कहता है—बल्हारों को यहाँ इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर ही हवेली खड़ी करेंगे।

रत्नकुमार साँभरिया की कहानी 'मेरा घर' की दो पात्र पुष्पा और सरला की प्रगाढ़ मित्रता है। लेखक लिखता है—"दोनों छठी में थे। हम उम्र। ग्यारह के नीड़े-गोड़े।

..... न जात की झाँजय, न पाँत की पोप लीला। दो देह, एक ध्येय। पढ़ना आगे बढ़ना।²¹ पुष्पा दलित और सरला सवर्ण। बहुत कशमकश और जिल्लत महसूसने के बाद पुष्पा यथार्थ का सामना करती दिखाई देती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी का शिल्प देखिए—“मैं जिस अम्मा की बात कर रहा हूँ उसका नाम क्या है? मैं नहीं जानता” शायद वह स्वयं भी अभी तक अपना नाम भूल गई होगी। जब वह मायके से ससुराल आई थी तो सास-ससुर ने उसे बहू कहकर पुकारा। देवर और ननद ने भाभी या भावज, पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ियों ने उसके खसम के नाम पर 'सुकडू की बहू' नामकरण अनजाने में ही कर दिया था।²² दलित कहानियों के शिल्प की यही विशेषता है कि जीवन के यथार्थ को वे ऐसे शिल्प में ढालते हैं कि पाठक उसे पढ़ते हुए अनुभूत कर सके।

मोहनदास नैमिश्यराय की कहानी 'आवाजें' का एक दृश्य—“दूर गाँव के पूर्वी छोर पर मेहतरों का एक टोला था जिसमें बीस-तीस परिवार शहर भर की जूठन खा-खाकर अपने पेट भरते थे। वहाँ मकान के नाम पर कुछ फूस की झोपड़ियाँ तथा आँगन के रूप में गोबर से लिपे-पुते जमीन के छोटे-बड़े टुकड़े थे, गाँव का नाम मकदूपुरा कहते हैं कभी औरंगजेब के जमाने में हिंदुओं को उजाड़कर यह गाँव बसाया गया था।²³ इस कहानी के शिल्प में किस्सागोई पद्धति संप्रेषण को और सहज बनाकर पाठक के मानस पर अंकित कर देती है। बयान की कला भी दलित कहानियों की अपनी विशेषता है। दलित कहानियाँ अनुभूति की सघनता से संयुक्त हैं। रत्नकुमार साँभारिया की कहानी 'मुक्ति' में बयान की कला देखिए—“महंत बालक रूप गद्दी पर बैठा था। ज्यों-ज्यों जवानी चढ़ती गई, उसकी करतूतें उफनती हुई नाली की तरह बहती गईं। लोग मंदिर से दूर होते गए। गाँव की जवान बहू-बेटियाँ वार-त्यौहार, मेले-ठेले ही मंदिर में जाती थीं। कुछ स्वर मुखर भी हुए, मंदिर की बदनामी की हवा भी चली भगवान (महाराज) के अस्तित्व पर उँगलियाँ भी उठी। आस्था नहीं, आगंतुक नहीं, आय नहीं। आय नहीं, ऐश नहीं। महंत को चिंता ने झकझोरा। उसके कान में एक बात फूँक दी। चिलमची चले ने।²⁴ बयान की यह कला दलित कहानीकारों की, दर्शनीय है।

कला पक्ष को लेकर दलित साहित्य प्रारंभ से ही आलोचनाओं से घिरा रहा है। अनेक समीक्षकों ने शिल्प एवं सौंदर्य की दृष्टि से दलित साहित्य को अपरिपक्व एवं कमजोर साबित किया है। उनके अनुसार दलित कथाकार सीधी-सपाट और विवरणात्मक शैली में कहानी कहते जाते हैं। उनमें शिल्प एवं सौंदर्य का विशेष आग्रह दिखाई नहीं देता। इस संदर्भ में मराठी लेखक शरण कुमार लिम्बाले का कहना है कि “जब हमारी माँ बहनों पर अत्याचार होता है, तो क्या उसे मैं कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करूँ? जब मैं लिखता हूँ तो मेरी रचनाएँ मेरे साथ हुए छल-कपट की अभिव्यक्ति होती हैं। अपने ऊपर हुए छल-कपट को क्या मैं कलात्मक शैली में पेश करूँ। जिसका घर जल

रहा हो उसका संताप सुर में होना चाहिए?"²⁵ कुछ आलोचक संस्कृत एवं हिंदी के सौंदर्यशास्त्र की मान्यताओं और कसौटियों पर दलित साहित्य को कसने का प्रयास करते हैं। दलित साहित्यकार अपने अलग सौंदर्यशास्त्र की मांग एवं समर्थन करता है। दलित कथाकार जहाँ यथार्थ का चित्र अंकित करता है वहीं परंपरावादी सौंदर्यशास्त्र आनंद को ही काव्य की आत्मा मानता है। "पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के 'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्' को सूत्र की तरह दुहराता है जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वाग्रहों से पूर्ण है। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के इस केंद्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता।"²⁶

हजारों वर्षों से शिक्षा के अधिकार से वंचित दलित समाज के लोगों का साहित्य उनके अपने अनुभवों का भंडार है जिसमें अनुभूति की प्रामाणिकता तो है किंतु शिल्प की परिवक्वता धीरे-धीरे आ रही है। नवीन होने के कारण इस साहित्य का शिल्प भी अलग और नये ढंग का है। एक ही विषय पर लिखी गई कहानियाँ अपने शिल्पगत प्रयोग के कारण अलग-अलग प्रभाव डालती हैं।

अतः दलित कथा-साहित्य के सौंदर्य की चर्चा करते समय हमें नवीन कसौटियों की तरफ देखना होगा। दलित कहानियों का सौंदर्य इस तथ्य पर निहित है कि वह दलित वर्ग में चेतना जागृत करने और संपूर्ण समाज को बदलाव हेतु प्रेरित करने में कहाँ तक सफल हुआ, दलित उत्थान में उसकी रचनात्मक भूमिका किस बिंदु तक सन्निहित है। प्रतिबद्धता ही दलित साहित्य का सौंदर्य विधान है। दलित लेखकों द्वारा दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र विकसित करने को लेकर हिंदी के समीक्षकों ने आपत्ति दर्ज की है तथापि दलित साहित्य का शिल्प और सौंदर्य के मापदंड क्या हों ? इस पर बहस जारी है।

संदर्भ—

1. भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान पृ. 5
- 2.3. डॉ. कैलाशनाथ पांडेय : भाषाविज्ञान रसायन, गाजीपुर साहित्य संसद, गाजीपुरा पृ. 82 से साभार पाणिनीय शिक्षा श्लोक-6 (नौखम्भा संस्करण 1948)
4. डॉ. कपिल देव द्विवेदी—भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि—दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ. 48
6. मोहनदास नैमिशराय—अपना गाँव, दूसरी दुनिया का यथार्थ संपादक—रमणिका गुप्ता नव लेखन प्रकाशन, हजारीबाग, 1997 पृ. 72

7. सूरजपाल चौहान संपा.—हिंदी के दलित कथाकारों की पहली कहानी, अनुभव प्रकाशन, दिल्ली 2004 पृ. 132
8. रत्नकुमार पाण्डेय संपा.—अनभै पत्रिका, अक्टूबर–दिसम्बर 2004, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 34, 35
9. मुद्राराक्षस संपा.—नई सदी की पहचान—श्रेष्ठ दलित कहानियाँ पृ. 22
10. रमणिका गुप्ता संपा.—भारतीय दलित साहित्य कथा कोश पृ. 237
11. ओम प्रकाश वाल्मीकि—सलाम, पृ. 99
12. डॉ. कुसुम वियोगी संपा.—दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ पृ. 27
13. रत्नकुमार साँभरिया संपा.—दलित समाज की कहानियाँ पृ. 13
14. मुद्राराक्षस : साहित्य की संस्कृति में दलित, राष्ट्रीय सहारा 19 नवम्बर, 1998 पृ. 14
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि संपा.—दलित हस्तक्षेप पृ. 20
16. डॉ. भोलानाथ तिवारी—हिन्दी पर्यायवाची कोश पृ. 602
17. डॉ. रजतरानी मीनू—हिन्दी दलित कथा साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ पृ. 247
18. वही पृ. 248
19. वही पृ. 248
20. मुद्राराक्षस संपा.—नई सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ पृ. 6
21. रत्नकुमार साँभरिया : दलित समाज की कहानियाँ पृ. 275
22. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम पृ. 113
23. मोहनदास नैमिशराय—आवाजें—पृ. 15
24. रत्नकुमार साँभरिया : दलित समाज की कहानियाँ 214
25. डॉ. रजतरानी मीनू—हिन्दी दलित तथा साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ पृ. 247
26. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2009 पृ. 48